आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत-
चक्रवर्ती द्वारा रचित

गोम्मटसार
कर्मकाण्ड

Presentation Developed By:
Smt. Sarika Vikas Chhabra

ग्रन्थ प्रारंभ करने से पहले इनका व्याख्यान आवश्यक है

नाम	• श्री गोम्मटसार कर्मकांड (अपर नाम – पञ्च-संग्रह)
कर्ता	• मूल कर्ता – सर्वज्ञ देव • उत्तर कर्ता – आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती
प्रमाण	• 9 अधिकार, 972 गाथाएँ
निमित्त	• राजा चामुण्डराय
हेतु	• साक्षात् – अज्ञान निवृत्ति • परम्परा – अभ्युदय, नि:श्रेयस की प्राप्ति
मंगल	• श्री नेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार

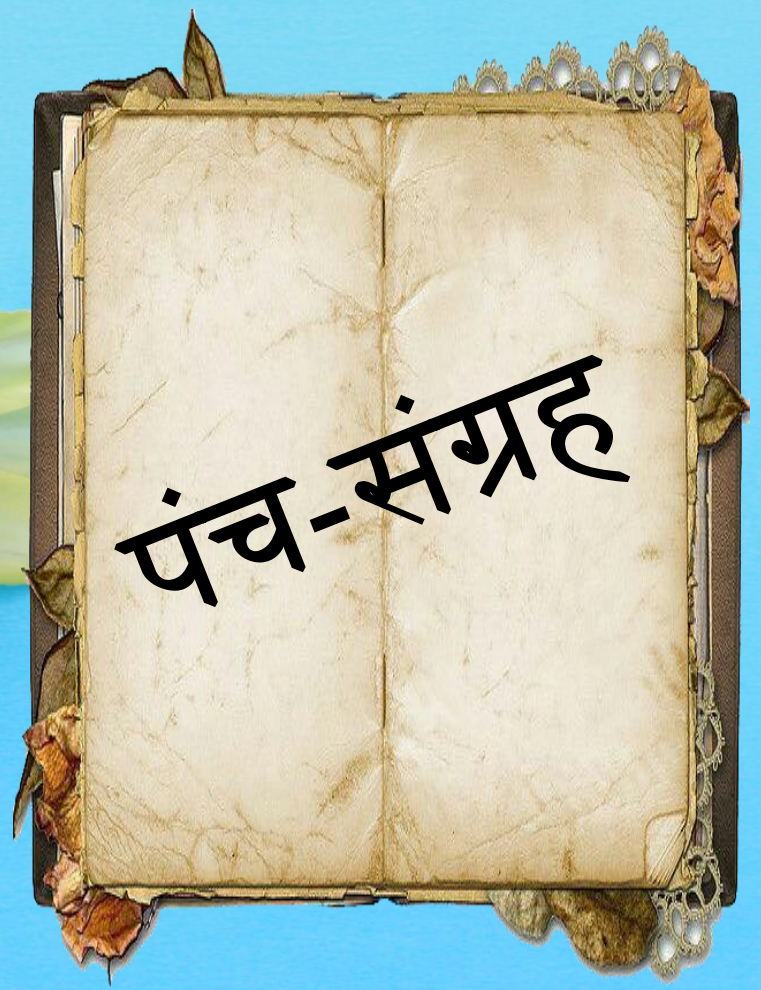

जीवकाण्ड

बंधक

कर्मकांड

- बंध-स्वामी
- बध्यमान
- बंध-हेतु
- बंध-भेद

www.JainKosh.org

ग्रन्थ की विषय-वस्तु

बध्यमान	बन्ध-स्वामी	बन्ध-हेतु	बन्ध-भेद
प्रकृतियाँ (प्रथम अधिकार)	गुणस्थान	मिथ्यात्व, औदयिकादि भाव (छठा, सप्तम अधिकार)	प्रकृति, स्थिति आदि (द्वितीय अधिकार)

शेष अधिकार इन्हीं के विशेष हैं ।

www.JainKosh.org

9 अधिकार

- प्रकृति समुत्कीर्तन
- बंध-उदय-सत्त्व
- सत्त्वस्थान भंग
- त्रिचूलिका
- बंध-उदय-सत्त्व स्थान समुत्कीर्तन
- प्रत्यय
- भाव चूलिका
- त्रिकरण चूलिका
- कर्म-स्थिति

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥1॥

- अन्वयार्थ - (गुणरयणविभूसणं) गुणरूपी रत्न ही जिनके आभूषण हैं, (महावीरं) जो मोक्षरूपी लक्ष्मी को देते हैं और (सम्मत्तरयणणिलयं) जो सम्यक्त्वादि गुणरूपी रत्नों के स्थान हैं ऐसे (णेमिं) नेमिनाथ तीर्थंकर देव को (सिरसा) मस्तक झुकाकर (पणमिय) नमस्कार करके (मैं) (पयडिसमुक्कित्तणं) प्रकृति-समुत्कीर्तन नामक ग्रन्थ को (वोच्छं) कहूंगा ॥1॥

www.JainKosh.org

मंगलाचरण में है

नमस्कार

नेमिनाथ भगवान को

प्रतिज्ञा

प्रकृति-समुत्कीर्तन कहने की

गुणरयण विभूसणं	• ज्ञानादि गुणरूपी रत्नों के आभूषणों को धारण करने वाले
महावीरं	• मोक्षरूपी लक्ष्मी को देने वाले
सम्मत्तरयणणिलयं	• सम्यक्त्वरूपी रत्न के स्थान

ऐसे श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नवाकर प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार को कहता हूँ ।

प्रकृति

- ज्ञानावरण आदि कर्मों की मूल-उत्तर प्रकृतियों का

समुत्कीर्तन

- व्याख्यान

जिसमें है वह प्रकृति-समुत्कीर्तन अधिकार है ।

प्रथम अधिकार की विषय-वस्तु

- जीव और कर्म का संबंध
- कर्म के भेद
- मूल 8 कर्मों के कार्य
- कर्मों के क्रम का कारण
- मूल-उत्तर कर्मों का स्वरूप
- कर्मों के विविध विभाजन
- कर्मों के नाम आदि 4 निक्षेप
- मूल-उत्तर कर्मों के नोकर्म

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा, ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥2॥

- अन्वयार्थ - (पयडी) प्रकृति (सील) शील और (सहावो) स्वभाव ये एकार्थवाची हैं। (कणयोवले मलं वा) स्वर्ण पाषाण में किट्टकालिमा के समान (जीवंगाणं) जीव और शरीर का (अणाइसंबंधो) अनादिकाल से सम्बन्ध हैं। (ताणत्थित्तं) उन दोनों का अस्तित्व (सयं सिद्धं) स्वयंसिद्ध है ॥2॥

www.JainKosh.org

प्रकृति, शील, स्वभाव, Nature ये एकार्थवाची हैं ।

प्रकृति = कारण बिना जो पदार्थ का सहज स्वभाव होता है ।

उदाहरण

आग का ऊपर जाना

पवन का तिरछा बहना

जल का अधोगमन

किसका स्वभाव ? क्या स्वभाव ?

जीव का	कर्म का
रागादिरूप परिणमना	रागादि को उत्पन्न करना

जीव और कर्म का अनादि संबंध है । जैसे— स्वर्ण-पाषाण

www.JainKosh.org

प्रश्न— अमूर्तिक जीव को मूर्तिक कर्म का बन्ध कैसे हो सकता है?

उत्तर— अनादि से ही ऐसा संबंध है, नवीन नहीं है ।
जो अनादि से ही है, इसमें तर्क कैसा ? तथा
जीव संसार अवस्था में कथंचित् मूर्तिक स्वीकार किया गया है
अतः बंध होता है ।

www.JainKosh.org

प्रश्न— इन जीव और कर्म का अस्तित्व कैसे स्वीकारें ?

उत्तर - इनकी सिद्धि स्वयं से होती है ।

'मैं' - इस प्रकार की प्रतीति जीव को सिद्ध करती है ।

धनवान, गरीब, रूपवान, कुरूप आदि विचित्रता कर्म को सिद्ध करती हैं । अतः जीव और कर्म का अस्तित्व स्वयं-सिद्ध है ।

www.JainKosh.org

देहोदयेण सहिओ, जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं, तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥3॥

- अन्वयार्थ – (देहोदयेण) शरीरनामकर्म के उदय से (सहिओ) सहित (जीवो) जीव (पडिसमयं) प्रतिसमय (कम्म णोकम्मं) कर्म और नोकर्म को (सव्वंगं) सर्वांग से (आहरदि) ग्रहण करता है ।
- (तत्तायसपिंडओव्व) जैसे तपाया हुआ लोहपिण्ड सर्वांग से (जलं) जल को ग्रहण करता है ॥3॥

www.JainKosh.org

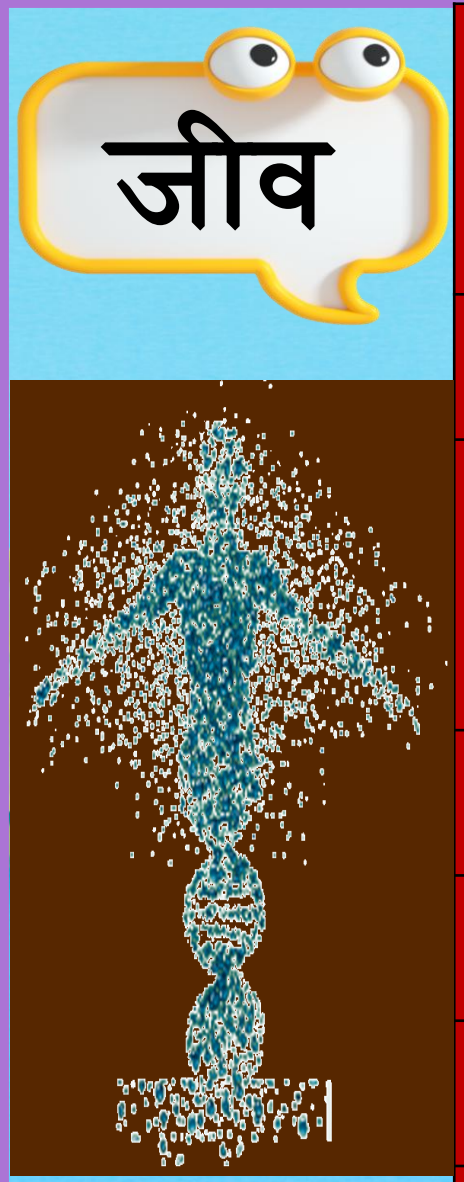

किसके उदय से	कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से	औदारिक आदि शेष शरीर नामकर्म के उदय से
किसे	कार्मण वर्गणा को	कार्मण, आहार वर्गणा को
कब	विग्रहगति में	विग्रहगति छोड़कर प्रतिसमय
कहाँ से	सर्वात्म प्रदेशों से	
क्या करता है?	ग्रहण करता है ।	
उदाहरण	अग्नि से तप्त लोहे का पिण्ड जल को सोखता है ।	
सिद्धांत	वैसे ही राग-द्वेष-मोह से तप्त जीव कार्मण वर्गणाओं को संश्लिष्ट करता है ।	

सिद्धाणंतिमभागं, अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि, जोगवसादो दु विसरित्थं ॥4॥

- अन्वयार्थ – यह जीव (सिद्धाणंतिमभागं) सिद्धराशि के अनन्तवें भाग और (अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव) अभव्यराशि से अनन्तगुणे परमाणुरूप (समयपबद्धं) समयप्रबद्ध को (बंधदि) बांधता है । (दु) पुनः (जोगवसादो) योग के वश से (विसरित्थं) विसदृश अर्थात् कम ज्यादा कर्म परमाणुओं को बांधता है ॥4॥

www.JainKosh.org

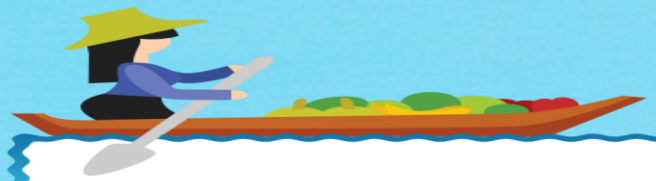

समयप्रबद्ध का प्रमाण

जो प्रतिसमय बांधा जाता है,
वह समयप्रबद्ध कहलाता है ।

$\frac{\text{सिद्ध राशि}}{\text{अनंत}}$ अथवा अभव्य राशि × अनन्त

जघन्य समयप्रबद्ध = स

उत्कृष्ट समयप्रबद्ध = स × असंख्यात

चूंकि जघन्य योग से उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है, अतः जघन्य समयप्रबद्ध से उत्कृष्ट समयप्रबद्ध असंख्यात गुणा है । तथापि सामान्यपने $\frac{\text{सिद्ध राशि}}{\text{अनंत}}$ प्रमाण ही है ।

जीरदि समयपबद्धं, पओगदोऽणेगसमयबद्धं वा ।
गुणहाणीण दिवड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं ॥5॥

- अन्वयार्थ – प्रतिसमय (समयपबद्धं) एक समयप्रबद्ध की (जीरदि) निर्जरा होती है (वा) अथवा (पओगदो) प्रयोग से (णेगसमयबद्धं) अनेक समयप्रबद्धों की निर्जरा हो जाती है ।
- तथापि (गुणहाणीण दिवड्ढं) डेढ़ गुणहानि प्रमाण (समयपबद्धं) समयप्रबद्धों का (सत्तं) सत्त्व (हवे) होता है ॥5॥

www.JainKosh.org

उदय, सत्त्व का प्रमाण

उदय

- सामान्यरूप से 1 समयप्रबद्ध
- सातिशय क्रियासंयुक्त के असंख्यात समयप्रबद्ध

सत्त्व

- $\frac{3}{2}$ × गुणहानि × समयप्रबद्ध

www.JainKosh.org

कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥6॥

- अन्वयार्थ – (कम्मत्तणेण) सामान्य से कर्म (एक्कं) एक प्रकार का है।
- (दव्वं भावोत्ति) द्रव्य भाव की अपेक्षा (दुविहं) दो प्रकार का है।
- (पोग्गलपिंडो) पुद्गलपिण्ड को (दव्वं) द्रव्यकर्म कहते हैं और (तस्सत्ती) उस पिण्ड में रहने वाली फल देने की शक्ति को (भावकम्मं) भावकर्म कहते हैं ॥6॥

www.JainKosh.org

कर्म के भेद

एक

दो

कर्मभाव की अपेक्षा

द्रव्यकर्म

भावकर्म

पुद्गल कर्म का पिण्ड

फल देने की शक्ति अथवा अज्ञान/क्रोधादि (कार्य में कारण का उपचार)

www.JainKosh.org

तं पुण अट्ठविहं वा, अडदालसयं असंखलोगं वा ।
ताणं पुण घादित्ति, अघादित्ति य होंति सण्णाओ ॥7॥

- अन्वयार्थ – (पुण तं) पुनः वह सामान्य कर्म (अट्ठविहं) आठ प्रकार है (वा) अथवा (अडदालसयं) एक सौ अडतालीस प्रकार है (वा) अथवा (असंखलोगं) असंख्यात लोक प्रकार है।
- (ताणं) उन आठ प्रकार आदि कर्मों की (घादित्ति) घाति (य) और (अघादित्ति) अघाति इस प्रकार (सण्णाओ) संज्ञाए (होंति) होती हैं ॥7॥

कर्म के भेद

आठ	•ज्ञानावरण आदि 8 प्रकार की अपेक्षा
148	•उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा
असंख्यात लोक	•उत्तरोत्तर भेदों की अपेक्षा

www.JainKosh.org

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्ठ पयडीओ ॥8॥

- अन्वयार्थ – (णाणस्स आवरणं) ज्ञान का आवरण अर्थात् ज्ञानावरण, (दंसणस्स आवरणं) दर्शनावरण, (वेयणीय) वेदनीय, (मोहणियं) मोहनीय, (आउगणामं) आयु, नाम (गोदंतरायं) गोत्र और अंतराय (इदि अट्ठ पयडिओ) इस प्रकार आठ मूल प्रकृतियाँ हैं ॥8॥

www.JainKosh.org

कर्मों के नाम एवं क्रम

www.Jai[illegible]sh.org

आवरणमोहविग्घं, घादी जीवगुणघादणत्तादो ।
आउगणामं गोदं, वेयणियं तह अघादित्ति ॥9॥

- अन्वयार्थ – (आवरणमोहविग्घं) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार कर्म (घादी) घाति हैं (जीवगुणघादणत्तादो) क्योंकि ये जीव के गुणों को घातते हैं ।
- (तह) तथा (आउगणामं गोदं वेयणियं) आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय (अघादित्ति) अघाति ऐसे कहे जाते हैं ॥9॥

www.JainKosh.org

कर्म

घातिया

(जीव के गुणों को घाते)

- ज्ञानावरण
- दर्शनावरण
- मोहनीय
- अन्तराय

अघातिया

(जीव के गुणों को घातियावत् न घाते)

- आयु
- नाम
- गोत्र
- वेदनीय

www.JainKosh.org

क्या कर्म जीव के गुणों को घातते हैं ?

कर्म जीव के गुणों के घात में निमित्त होते हैं । कर्म व जीव में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, कर्ता-कर्म संबंध नहीं है ।

जीव के परिणामों का मूल कारण जीव स्वयं ही है । उस समय निमित्त कारण; कर्म का उदय आदि है ।

इसी प्रकार बंध, उदय आदि कर्मरूप अवस्था होने का मूल कारण कार्मण वर्गणा स्वयं है । उस समय निमित्त कारण जीव के भाव हैं ।

उपादान	निमित्त
जीव का अज्ञान	ज्ञानावरण कर्म का उदय
जीव में मोह, राग, द्वेष	मोहनीय का उदय
कर्म का बन्ध	जीव का मोहादि भाव
कर्म का संवर	जीव का सम्यक्त्व आदि भाव

इसी प्रकार इस ग्रन्थ में सर्वत्र समझना ।

www.JainKosh.org

केवलणाणं दंसण-मणंतविरियं च खयियसम्मं च ।
खयियगुणे मदियादी, खयोवसमिए य घादी दु ॥10॥

- अन्वयार्थ - (केवलणाणं) केवलज्ञान (दसंणमणंतविरियं) केवलदर्शन, अनन्तवीर्य (खयियसम्मं) क्षायिक सम्यक्त्व (च) च शब्द से क्षायिक चारित्र (च) द्वितीय च शब्द से क्षायिक दानादि इन (खयियगुणे) क्षायिक गुणों को (य) और (मदियादि) मतिज्ञान आदि (खयोवसमिये) क्षायोपशमिक गुणों को (ज्ञानावरणादि कर्म) (घादी दु) घातते हैं ॥10॥

www.JainKosh.org

कौन-सा कर्म क्या घातने में कारण ?

गुण	कर्म
क्षायिक ज्ञान, क्षायोपशमिक ज्ञान	ज्ञानावरण
क्षायिक दर्शन, क्षायोपशमिक दर्शन	दर्शनावरण
औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व	दर्शन मोहनीय
औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक चारित्र	चारित्र मोहनीय
क्षायिक और क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य	अंतराय

कम्मकयमोहवड्ढिय-संसारम्हि य अणादिजुत्तम्हि ।
जीवस्स अवट्ठाणं, करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥11॥

- अन्वयार्थ – (आउ) आयुकर्म (कम्मकयमोहवड्ढिय) कर्म के द्वारा किये गये और मोह से वृद्धि को प्राप्त (अणादिजुत्तम्मि) अनादिसहित (संसारम्मि) संसार में अर्थात् संसार की चार गतियों में (जीवस्स) जीव का (अवट्ठाणं करेदि) अवस्थान करता है ।
- (हलिव्व णरं) जैसे काष्ठ का खोडा मनुष्य को रोक कर रखता है ॥11॥

www.JainKosh.org

आयुकर्म का कार्य

- कर्म से बनाया
- मोह से वर्धित
- अनादि से चला आया

ऐसे चतुर्गतिरूप संसार में जीव को अवस्थित रखता है ।

जैसे पैर में फँसायी गयी ऐसी बेड़ी, जिससे प्राणी वहाँ से हिल भी नहीं सकता ।

गदिआदि जीवभेदं, देहादी पोग्गलाण भेदं च ।
गदियंतरपरिणमनं, करेदि णामं अणेयविहं ॥12॥

- अन्वयार्थ – (अणेयविहं णामं) अनेक प्रकार का नामकर्म (गदियादिजीवभेदं) गति आदि जीव के भेद को
- (देहादी पोग्गलाण भेदं) शरीरादि पुद्गलों के भेद को (च) और
- (गदियंतरपरिणमणं) एक गति से दूसरी गति में परिणमन को (करेदि) करता है ॥12॥

नामकर्म का कार्य

जीव विपाकी	पुद्गल विपाकी	क्षेत्र विपाकी	भव विपाकी
नारक आदि जीव के पर्यायों के भेद करना	औदारिक शरीर आदि पुद्गल के भेद करना	एक गति से अन्य गतिरूप परिणमन करना	एक गति में रहना

www.JainKosh.org

संताणकमेणागय-जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।
उच्चं णीचं चरणं, उच्चं णीचं हवे गोदं ॥13॥

- अन्वयार्थ – (संताणकमेण) सन्तानक्रम से (आगय जीवायरणस्स) आये हुए जीव के आचरण की (गोदमिदि) गोत्र ऐसी (सण्णा) संज्ञा है ।
- (उच्चं चरणं) उच्च आचरण (उच्चं गोदं) उच्च गोत्र है और (णीचं) नीच आचरण (णीचं गोदं) नीच गोत्र (हवे) है ॥13॥

www.JainKosh.org

गोत्रकर्म का कार्य

संतान-क्रम से आगत जीव के आचरण को गोत्र कहते हैं ।

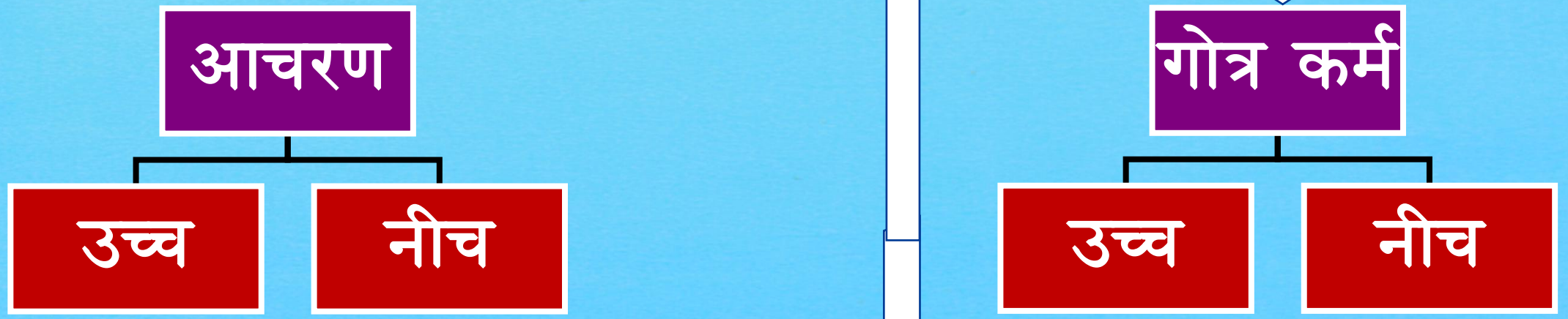

www.JainKosh.org

अक्खाणं अणुभवणं, वेयणियं सुहसरूवयं सादं ।
दुक्खसरूवमसादं, तं वेदयदीदि वेदणियं ॥14॥

- अन्वयार्थ – (अक्खाणं) इन्द्रियों के विषयों का (अणुभवणं) अनुभवन करना (वेयणियं) वेदनीय है ।
- वह (सुहसरूवयं) सुखस्वरूप (सादं) साता है और (दुक्खसरूवं) दुःखरूप (असादं) असाता है।
- (तं) उसे जो (वेदयदि) अनुभव कराता है (इदि वेदणियं) वह वेदनीय है ॥14॥

www.JainKosh.org

वेदनीय कर्म

इन्द्रियों के विषयों का अनुभव वेदनीय है ।

ऐसे सुख-दुःख का जो अनुभव करावे वह वेदनीय कर्म है ।

www.JainKosh.org

अत्थं देक्खिय जाणदि, पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं ।
इदि दंसणं च णाणं, सम्मत्तं होंति जीवगुणा ॥15॥

- अन्वयार्थ- (अत्थं देक्खिय) अर्थ को देखकर (जाणदि) जानता है।
- (पच्छा) उसके पश्चात् (सप्तभंगीहिं) सातभंगों के द्वारा (निश्चयकर) (सद्दहदि) श्रद्धान करता है।
- (इदि) इस प्रकार (दंसणं णाणं सम्मत्तं) दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व (जीवगुणा) जीव के गुण (होंति) हैं ॥15॥

www.JainKosh.org

जीव के गुण

जीव

अर्थ को देखता है → दर्शन गुण

फिर जानता है → ज्ञान गुण

फिर निश्चय करता है → ज्ञान गुण

फिर श्रद्धान करता है → सम्यक्त्व गुण

www.JainKosh.org

अब्भरहिदादु पुव्वं, णाणं तत्तो हि दंसणं होदि ।
सम्मत्तमदो विरियं, जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥16॥

- अन्वयार्थ – (अब्भरहिहादु) पूज्य होने से (णाणं) ज्ञान को (पुव्वं) पहले कहा है।
- (तत्तो) उसके पश्चात् (दंसणं) दर्शन (होदि) कहा है।
- (अदो) इसके पश्चात् (सम्मत्तं) सम्यक्त्व कहा है ।
- वीर्य (जीवाजीवगदमिदि) जीव अजीव दोनों में पाया जाता है इसलिए (विरियं) वीर्य को (चरिमे) अन्त में कहा है ॥16॥

www.JainKosh.org

घातिया कर्मों के क्रम का कारण

ज्ञान	• 1) ज्ञान सर्व गुणों में पूज्य है और • 2) अल्पाक्षर वाला है, अत: ज्ञान को सबसे पहले कहा ।
दर्शन	• फिर चेतनात्मक दर्शन गुण को कहा ।
सम्यक्त्व	• ज्ञान-दर्शनपूर्वक श्रद्धान होता है, अत: सम्यक्त्व उसके पश्चात् कहा ।
वीर्य	• वीर्य जीव व पुद्गल दोनों में पाया जाता है, अत: अन्त में कहा ।

इस प्रकार इन गुणों को घातने वाले कर्मों का क्रम है —

ज्ञानावरण → दर्शनावरण → मोहनीय → अंतराय

v.JainKosh

घादीवि अघादिं वा, णिस्सेसं घादणे असक्कादो ।
णामतियणिमित्तादो, विग्घं पडिदं अघादि चरिमम्हि॥17॥

- अन्वयार्थ - (विग्घं घादीवि) अन्तराय कर्म घाति होने पर भी (अघादिं वा) अघाति के समान (णिस्सेसं) समस्त गुण को (घादणे) घातने में (असक्कादो) समर्थ न होने से तथा (णामतियणिमित्तादो) नाम, गोत्र और वेदनीय के निमित्त से (अपना कार्य करता है) इसलिए (अघादि चरिमम्मि) अघाति कर्मों के अन्त में उसका (पढिदं) पाठ किया है ॥17॥

अंतराय को अंत में क्यों रखा ?

1) अंतराय घाति कर्म होने पर भी अघातिया की तरह है क्योंकि जीव के गुण का पूर्ण घात करने में समर्थ नहीं है ।

2) नाम, गोत्र, वेदनीय के निमित्त से घात का कारण बनता है ।

3) जीव व अजीव सर्व पदार्थों में वीर्य पाया जाता है – यह बताने के लिए ।

www.JainKosh.org

आउबलेण अवट्ठिदि, भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु ।
भवमस्सिय णीचुच्चं, इदि गोदं णामपुव्वं तु ॥18॥

- अन्वयार्थ – (आउबलेण) आयुकर्म के निमित्त से (भवस्स) भव की (अवट्ठिदि) अवस्थिति होती है (इदि) इसलिए (आउपुव्वं) आयुकर्मपूर्वक (णाम) नामकर्म कहा है अर्थात् नामकर्म से पूर्व आयुकर्म कहा है ।
- (तु) पुनः (भवमस्सिय) भव के आश्रय से ही (णीचुच्चं) नीचपना, उच्चपना होता है (इदि) इसलिए (गोदं णामपुव्वं) गोत्रकर्म से पहले नामकर्म कहा है ॥18॥

www.JainKosh.org

अघातिया कर्म के क्रम का कारण

आयु	• आयु के बल से भव की अवस्थिति है । इसलिए सबसे पहले आयु कर्म कहा ।
नाम	• भव होने पर ही शरीर और चतुर्गतिरूप स्थिति है । इसलिए आयु के पश्चात् नाम कर्म कहा ।
गोत्र	• भव का आश्रय करके नीच-उच्चपना होता है । इसलिए नाम के पश्चात् गोत्र कर्म कहा ।

www.JainKosh.org

घादिंव वेयणीयं, मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।
इदि घादीणं मज्झे, मोहस्सादिम्हि पढिदं तु ॥19॥

- अन्वयार्थ – (घादिंव) घातिकर्म के समान (वेयणीयं) वेदनीय कर्म (मोहस्स बलेण) मोहनीय के बल से ही (जीवं) जीव का अर्थात् जीव के गुणों का (घाददे) घात करता है।
- (इदि) इसलिए (घादीणं मज्झे) घातिकर्मों के बीच में और (मोहस्सादिम्मि) मोहनीय के पहले वेदनीय (पढिदं) कहा है ॥19॥

वेदनीय

वेदनीय कर्म घातिया कर्मवत् है । क्योंकि —

1) इन्द्रियों के विषय का अनुभव करवाकर घात करता है ।

2) रति-अरति कषाय के बल से ही जीव का घात करता है, उसके बिना नहीं ।

इसलिए वेदनीय को मोहनीय के पूर्व कहा है ।

www.JainKosh.org

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं ॥20॥

- अन्वयार्थ - (णाणस्स दंसणस्स य आवरणं) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, (वेयणीयमोहणियं) वेदनीय, मोहनीय, (आउगणामं) आयु, नाम, (गोदंतरायमिदि) गोत्र और अंतराय – इस प्रकार (पढिदं) पाठक्रम है (इदि) यह बात (सिद्धं) सिद्ध हुई ॥20॥

कर्मों के क्रम का कारण

कर्म	कारण
1. ज्ञानावरण	ज्ञान के पूज्य होने के कारण
2. दर्शनावरण	दर्शन भी चेतनात्मक गुण है
3. वेदनीय	घाति समान होने से, मोह बिना असमर्थ होने से
4. मोहनीय	सम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन के पश्चात् ही होता है ।
5. आयु	अघाति होने से
6. नाम	आयुपूर्वक ही चतुर्गति होने से
7. गोत्र	भवपूर्वक ही नीच-उच्चपना होने से
8. अन्तराय	जीव-अजीव में साधारण होने से

पडपडिहारसिमज्जा-हलिचित्तकुलालभंडयारीणं ।
जह एदेसिं भावा, तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥21॥

- अन्वयार्थ – (पड) देवता के मुख पर वस्त्र (पडिहार) द्वारपाल (असि) शहद लपेटी तलवार (मज्जा) मदिरा (हलि) खोड़ा (चित्त) चित्रकार (कुलाल) कुम्हार (भंडयारीणं) भण्डारी
- (एदेसिं) इनका (जह) जैसा (भावा) स्वभाव होता है (तहवि य) वैसा ही स्वभाव (कम्मा) इन कर्मों का भी (मुणेयव्वा) जानना चाहिए ॥21॥

www.JainKosh.org

ज्ञानावरण कर्म

ज्ञानं आवृणोति

ज्ञान को आवरण करे, आच्छादित करे वह ज्ञानावरण कर्म है ।

जैसे— प्रतिमा पर पड़ा वस्त्र ।

www.JainKosh.org

दर्शनावरण कर्म

दर्शनं आवृणोति

दर्शन को आवरण करे, आच्छादित करे वह दर्शनावरण कर्म है ।

जैसे— राजद्वार पर खड़ा द्वारपाल ।

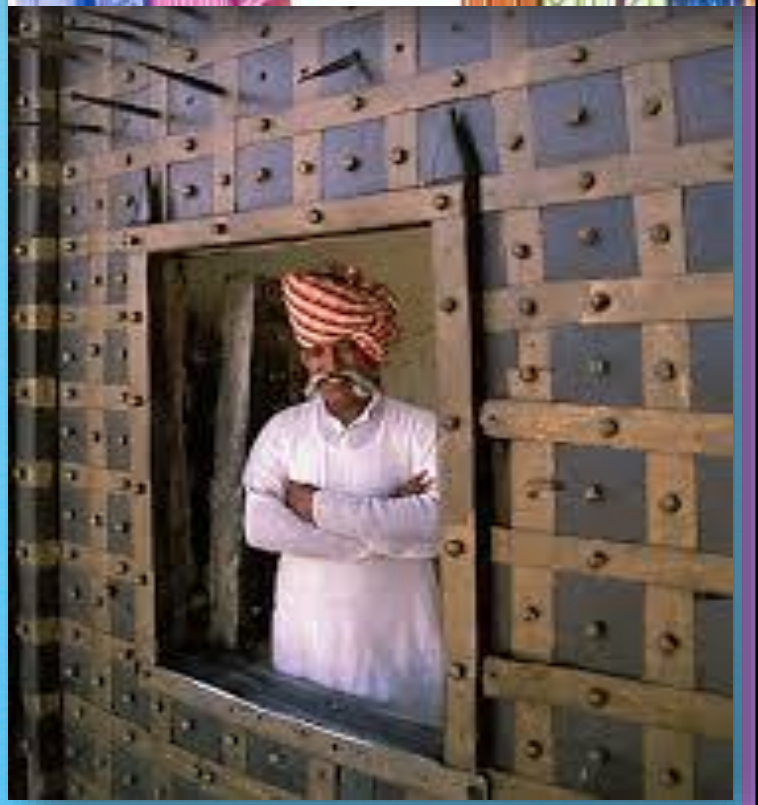

www.JainKosh.org

वेदनीय कर्म

‘वेदयति’

सुख-दुःख का वेदन कराये वह वेदनीय कर्म है ।

जैसे— शहद लपेटी खड्ग की धार

मोहनीय कर्म

‘मोहयति’

मोहित, असावधान करे वह मोहनीय कर्म है ।

जैसे— मदिरा, धतूरा

www.JainKosh.org

आयु कर्म

‘एति’

पर्याय धारण करने के लिए प्राप्त होती है वह आयु कर्म है ।

जैसे— खोड़ा, सांकल, बेड़ी

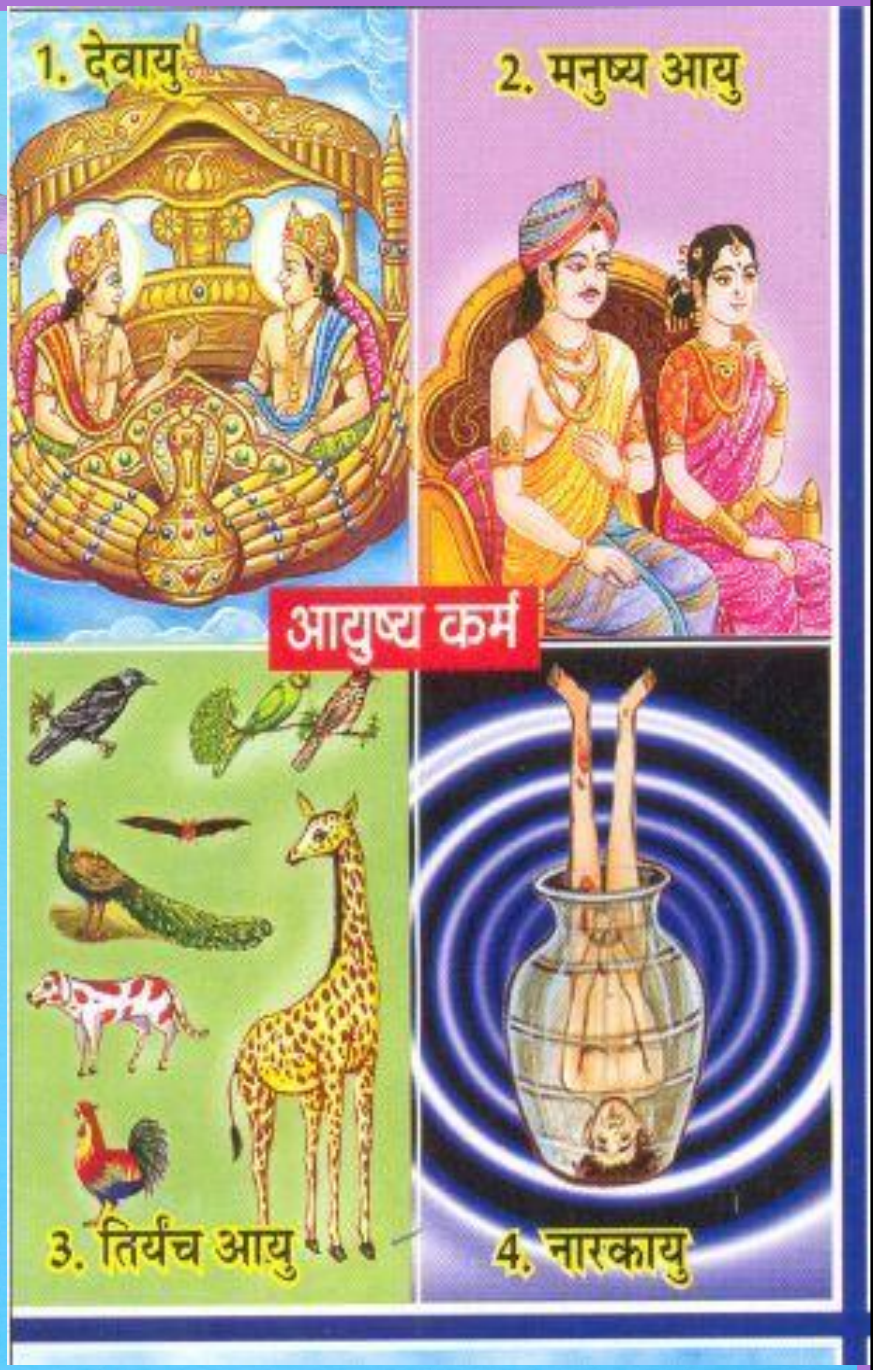

नाम कर्म

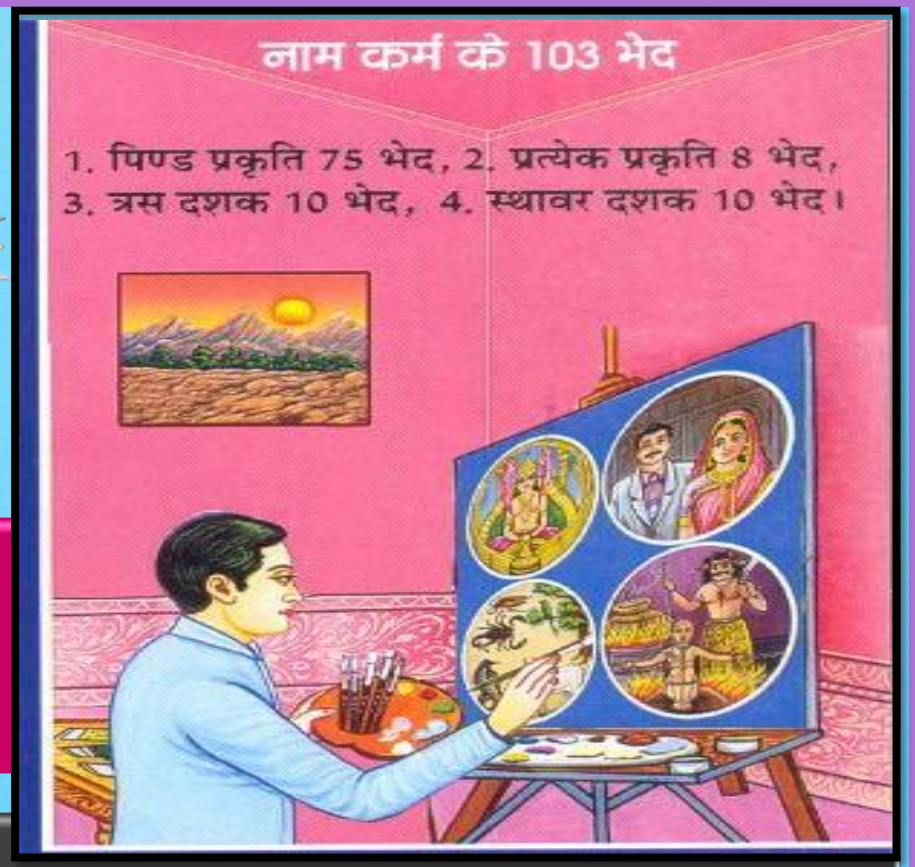

‘नाना मिनोति’

नाना प्रकार के कार्य निष्पादन करे, वह नाम कर्म है ।

जैसे— चित्रकार अनेक चित्र बनाता है ।

www.JainKosh.org

गोत्र कर्म

‘गमयति’

उच्च-नीचपने को प्राप्त कराये, वह गोत्र कर्म है ।

जैसे— कुंभकार बड़े-छोटे बर्तन बनाता है ।

www.JainKosh.org

अंतराय कर्म

‘अंतरं एति’

दाता, पात्र आदि में परस्पर अंतर को प्राप्त कराये वह अंतराय कर्म है ।

जैसे— भंडारी, कोषगार

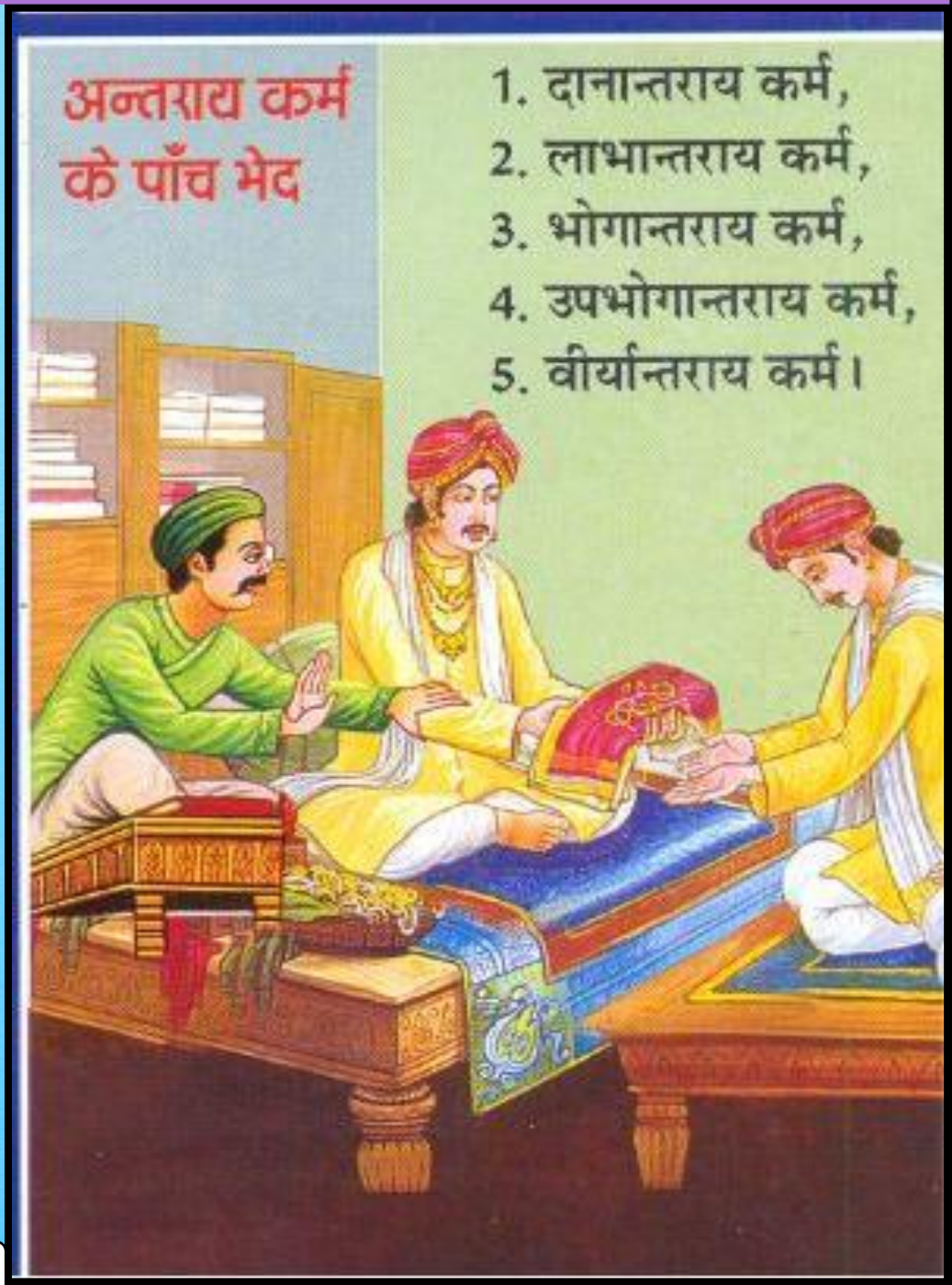

www.JainKosh.org